Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 13, Issue No. 1, April-2017, ISSN 2230-7540

वैदिक दर्शन मे व्यक्तित्व निर्माण की अवधारणा

Harish Dutt*

Research Scholar, Sanskrit and Pali Department, Punjabi University, Patiala

शोध-पत्र सार – *वेदों मे निर्माण वाद की बात को 'सोम' नामक देवता के द्वारा सिद्ध किया गया है। सोम को स्फूर्ति (God of Inspiration) का देवता माना गया है सोम देवता को ही वनस्पति-जगत् की अधिपति, सर्वशक्तिमान, पूर्णतः नीरोग करने वाला और अमरत्व प्रदान करने वाला माना है इसी प्रकार विष्णु , सूर्य, उषा, अग्नि, पूषा इत्यादि देवताओं को भी जगत के विभिन्न तत्वों व वस्तुओं का उत्त्पतिकत्र्ता बताया गया है।*

यही से दर्शन के प्रति ऋषियों की जिज्ञासा को ओर बढ़ावा मिलने लगा। मुख्य शब्दः वेद, देवता, सर्वशक्तिमान, निर्माण, पूर्णतः इत्यादि।

---------------------------------X---------------------------------

भूमिकाः

वेद केवल भारतवर्ष के लिये ही नही अपितु समुचे विश्व मे मानव मात्र के लिये आदरणीय है। वेदो से ही धर्म की संस्थापना हुई **"वेदों ऽखिलो धर्ममूलम्"**[36] किन्तुः मूलतः विश्व का कल्याण, समूचे मानव जाति के उन्नयन, शुभ संस्कारो के प्रवर्तन, ज्ञान की विभिन्न विधाओं के निर्देशन वेदो से ही अवतरित हुये है। भक्ति और कर्म के त्यागमय समर्पण के कारण वेद मानव-धर्म की प्रतिष्ठा करते है।

'विद्' धातु से ज्ञान अर्थ मे घन्न' प्रत्यय लगाकर 'वेद' शब्द बनता है। विद् धातु के चार अर्थ होते है –

ज्ञान, सता, लाभ, और विचारण।[37]

जिसके द्वारा सभी विधाओं को जानता है, प्राप्त करता है, विचार करता है और विद्वान होता है (विद् ज्ञाने, विद् सतायाम्, विद् लाभे, विद् विचारणे) विश्व स्तर पर विद्वाना ने वेद का सर्वमान्य अर्थ अज्ञान से ज्ञान की ओर से ले जाने वाली शक्ति के रूप मे माना है। जो कि विद्यावाचक है, केवल ज्ञान है।

डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार "वेद मनुष्य के धार्मिक और दार्शनिक विचारो का मानव भाषा मे प्रथम परिचय प्रस्तुत करता है। प्राचीनतम इतिहास सामाजिक नियम, सदाचार, दर्शन, कला, धर्म आदि ज्ञान का आधार वेद है।[38]

वेद मे उस सत्य का वर्णन है जिसका दर्शन सबसे प्रथम भारतवर्ष के मनीषियों व ऋषियों को हुआ था इसीलिये उन्होने भी इसे "श्रुति" कहा है इसमे लौकिक एव अलौकिक ज्ञान भरा हुआ है। वेदों से दर्शन का सर्वप्रथम प्रार्दुभाव हुआ है क्योंकि सृष्टि की रचना के बारे मे यदि कोई प्रमाण मिलता है; तो वह वेद मे है। ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त' मे निर्गुण ब्रहम का वर्णन मिलता है जिसकी मूलसता से सबकुछ उत्पन्न हुआ है, जो समस्त वस्तुओं मे विद्यमान है उसे न सत् कहा जा सकता है न असत्। इस मंत्र मे कहा भी गया है।

"नासदासीतो सदासीत तदानीं नासीद्रजो ना व्योमा परा यत्"[39]

अर्थात् जो कुछ है सो पहले नही था जो कुछ नही है सो भी नही था न पृथ्वी थी, न आकाश था न उसके परे स्वर्ग लोक था।

इस मंत्र से यह ज्ञात होता है कि सृष्टि पूर्व उस ब्रहम से पूर्व कुछ नही था केवल वह था जो सब मे विद्यमान था। इसी लिए विद्वानों ने सृष्टि के आधार के प्रारम्भ से ही उत्पति की जिज्ञासा रखने वाले इस सूक्त को दार्शनिक सूक्तों की श्रेणी मे रखा है। वेदों में अन्य सूक्तों मे भी जगत् ज्ञान होता है कही यह भी वर्णन मिलता है कि सोम से पृथ्वी, आकाश, दिन, रात, जल आदि की उत्पति मानी गई है।

[36] मनुसमृति
[37] भारतीय दर्शन - चटर्जी एवं दास पृष्ठ संख्या 25
[38] भारतीय दर्शन - चटर्जी एवं दास पृष्ठ संख्या 27
[39] ऋग्वेद 10/129/1

देवताओं की संख्या अनेक रहने के कारण वैदिक काल के लोगों के सामने यह प्रश्न उठता है कि कौन से देवता को श्रेष्ठ मानकर आराधना की जाए?

"कस्मैः देवाय हविषा विधेम्"[40]

अर्थात् किस देवता को नमन किया जाए? धार्मिक चेतना एक ही देवता को श्रेष्ठ मानकर उसकी उपासना करने को बाध्य करती है परन्तु यहां पर तो जिस देवता की स्तुति की जाती है वही सबसे परम है सर्वशक्तिमान है कभी इन्द्र तो कभी वरूण, कभी विष्णु तो कभी अग्नि, कभी ऊषा तो कभी पूषा इन्ही नामों को अलग-अलग कहकर सभी को ईश्वर कहकर स्तुति की जाती है।

मैक्समूलर ने वैदिक धर्म को अनेकेश्वरवाद कहना ठीक नही समझा इन्होने एक नये शब्द का प्रयोग किया है, हिनाथीज्म (Henotheism) इसी विचारधारा ने वेदों मे दार्शनिक क्रमिक निर्माण को जन्म दिया। पहले अनेकेश्वरवाद (Polytheism) से प्रारम्भ कर हिनाथीज्म (Henotheism) होते हुए अंत मे एकेश्वरवाद (Menotheism) पर पहुंच गया। वेद का एक प्रसिद्ध मंत्र एकेश्वरवाद की ओर संकेत करता है---

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"

अग्निर्यमं मातरिश्वानमाहुः![41]

अर्थात् एक ही सत् है, विद्वान लोग उसे अनेक मानते है कोई उसे अग्नि, कोई उसे यम या कोई वायु या कुछ विद्वान उसे ब्रह्म कहते है।

पुरुष के व्यक्तित्व का आधार मन

वेदों मे मन की गति के सबसे तीव्र माना है। मन ही सभी इन्द्रियों का नियन्त्रक भी है अभिचारक भी यदि मन पर व्यक्ति का अंकुश है, तो सम्पूर्ण परा शक्ति से वह साक्षात्कार कर सकता है, इसलिये वेदों में मन को दृढ़ संकल्पित करने की प्रार्थना की गई है।

यजाग्रतों दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति।

दूर›.म ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संडॅल्पमस्तु।।[42]

[40] ऋग्वेद 10/121/1

[41] राधाकृष्णन इंडियन फिलोस्फी पृष्ठ-91

[42] शुक्ल यर्जुवेद 34.1

वेदान्त दर्शन में कठोपनिषद् एक रथ के दृष्टान्त द्वारा मानव व्यक्तित्व का वर्णन करता है इस उपनिषद द्वारा "हमारा शरीर रथ है और बुद्धि सारथी है मन लगाम है, जिससे कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ जुड़ी हुई है, ये ज्ञानेन्द्रियाँ व्यक्ति को संसार का ज्ञान देने वाली मानों पांच वातायन है, भोग्य विषय रूपी सड़क पर यह रथ चल रहा है। जो व्यक्ति इस देह व मन के साथ तादात्मय का बोध करता है उसे विषयों का कर्मफलों का भोक्ता कहा गया है।

वेदों में व्यक्तित्व निर्माण:

व्यक्तित्व निर्माण से जुड़ी मन की अन्य महत्वपूर्ण क्रिया है हमारी भावनाएं। ये भावनाएं जितनी ही संयमित होगी, व्यक्ति का व्यक्तित्व भी उतना ही स्वास्थ होगा। व्यक्तित्व को सुन्दर बनाने में वेदों के मंत्रों में कामनाओं के साथ-साथ महत्वपूर्ण आयामों को भी लक्षित किया गया है। ऋषियों के अनुसार व्यक्तित्व निर्माण में जो तथ्य है वह इस प्रकार हैः

चरित्र निर्माणः

कोई भी समाज, देश व राष्ट्र सार्वजनिक तथा सर्वहितकारी भावनाओं को त्यागकर स्वार्थपरायण हो जाता है तभी उसमें असत्य, अविश्वास, छल-कपट, भ्रष्टाचार, पारस्परिक वैमनस्य, अशान्ति तथा उन्तमाद जनित बलात्कार आदि भावनाएं विकसित हो जाती हैं। इन सबका मूल कारण चरित्रगत हीनता है। वेद उदात चरित्र वाले मानवों के निर्माण का सन्देश देताहै –

"चरित्रांस्ते शुन्धामि।"[43]

तुम्हारे चरित्र शुद्ध हों। शुद्ध चरित्र वाले का व्यवहार भी शुभ होता है। उसकी सदैव कामना होती है -

"भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः"[44]

हम उच्चता के भावों से युक्त हों, अतः स्वस्थ एवं निर्दोष जीवन, दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिए कानों से भद्र सुनें, आँखों से सदैव भद्र ही देखें। समस्त इन्द्रियाँ भद्रभाव से युक्त हों, इसके लिए मन की शुद्धता, पवित्रता आवश्यक है। चरित्रवान् व्यक्ति ही उच्च स्वर में घोषणा कर सकता है-

"परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।

[43] यजुर्वेद 6/13

[44] ऋक. 1/86/8

www.ignited.in

परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि संचर।

गृहेषु गोषु मे मनः।''[45]

हे मेरे मन की पाप भावना! तू दूर जा। मैं निन्दनीय कर्म की प्रवृत्ति तेरे कहने से भी अपने अन्दर नहीं रखूंगा। मैं तुझे नहीं चाहता। तू वृक्षों वनों में विचरण कर। मैं अपने मन को घर की समृद्धि में और गौओं की सेवा में लगाऊँगा।

''आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।''[46]

चरित्रहीन व्यक्ति को ज्ञान भी पवित्र नहीं करते हैं अर्थात् आचार (चरित्र) के बिना ज्ञान का कोई महत्व नहीं रह जाता है।

आत्म-विश्वासः

इस संसार में समग्र सफलताएँ आत्म-विश्वास की भावना से प्राप्त होती हैं। आत्म हीनता पतन है।

''अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद्ध न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन।''[47]

मैं इन्द्र शक्ति सम्पन्न तथा ऐश्वर्य सम्पन्न हूं। मैं अपनी श्रेष्ठता में कभी पराजित नहीं होता। मृत्यु भी मेरी श्रेष्ठता को छीनने में असमर्थ है। यह आत्म-विश्वास का भाव स्वयं को पुष्ट करने से प्राप्त होता है। इसके लिए किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है-

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।

''महिमा ते अन्येन न सन्नशे।''[48]

हे बल और ज्ञान से सम्पन्न मनुष्य ! तू अपने शरीर को समर्थ बना, स्वयं उत्तम कर्म कर-स्वयं सामथ्र्यशाली बन। तेरे आत्म-विश्वास की महिमा को अन्य कोई नष्ट नहीं कर सकता। आत्म-हीनता की भावना कायरता है। अतः वेद आत्म-विश्वास के भाव को इन शब्दों में प्रबुद्ध करता है, जगाता है, उत्पन्न करता है-

''शुक्रोऽसि भाजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।

आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम।''[49]

[45] अर्थवेद 6/45/1

[46] वसिष्ठस्मृति 6/3

[47] ऋग्वेद 10/48/5

[48] यजुर्वेद 23/15

[49] अथर्ववेद 2/11/5

हे मनुष्य, तू शूद्ध है, तेजस्वी है, आनन्दमय है, ज्योतिमान् है। तू आत्म-विश्वास के साथ (अपने से) श्रेष्ठों तक बढ़, समान लोगों से आगे बढ़।

''भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।''[50]

सत्य ही हममें आत्म विश्वास इतना हो कि मेरे श्रेष्ठ चरित्र, कार्य एवं व्यवहार के कारण चारों दिशाएँ मेरे आगे झुक जायें अर्थात् सब ओर से मेरा जीवन सफल हो।

दिव्य भावना

जीवन की प्रगति दिव्य एवं उच्च भावनाओं से होतीहै। वेद की विशेषता यह है कि वर्ग, सम्प्रदाय, ऊँच-नीच आदि भावनाओं से परे होकर यह दिव्य भावनाओं के जागरण का उत्तम सन्देश देता है।

''यो जागार तमृचः कामयन्ते।

यो जागार तमु सामानि यन्ति।।''[51]

अर्थात् जो जागता है - दिव्य भावनाओं से भरा रहता है उसी को प्रशंसा प्राप्त होती हैं।जो जागता है उसे शान्ति प्राप्त होती है। जो व्यक्ति केवल स्वयं दिव्य भावों से भरा रहता है, किन्तु दूसरों को उन भावों से संयुक्त नहीं करता है, ऐसा व्यक्ति स्वार्थी है, अज्ञानी है-

मज्जन्त्यविचेतसः।[52]

अज्ञानी, असावधान, एवं स्वार्थी व्यक्ति डूब जाते हैं। अतः वेद सावधान करता हुआ बोध देता हैं-

''उचिष्ठ ब्रहमणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।''[53]

हे दिव्य विचारों से संयुक्त देव। उठो, सावधान होकर अन्य लोगों को भी अपने यज्ञमय =परोपकारमय जीवन से जागरूकता का सन्देश दो। वेद का सन्देश निराश जीवनों में आशा के दिव्य भावों का स×चार कर देता है, ऊँचा उठने का उत्साह भर देता है-

वेद का दिव्य भावों के प्रति यह सन्देश कितना उत्साहवर्धक है-

''अहमिन्द्रों न पराजिग्ये इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन।''[54]

[50] ऋग्वेद 20/25/1

[51] ऋग्वेद 5/44/17

[52] ऋग्वेद 6/64/21

[53] अथर्ववेद 16/63/1

मैं इन्द्र हूँ, मैं शक्तिशाली हूँ, ऐश्वर्यशाली हूँ। मैं अपनी धन्यता को कभी हार नहीं सकता। यह दिव्य भाव मेरा धन है, इस धन को मुझसे कोई छीन नहीं सकता, मृत्यु सामने हों तो भी मेरे दिव्य भाव समाप्त नहीं होंगे।

जो दिव्य भावनाओं से भरा होता है वह निरन्तर आगे बढ़ता है, उसके प्रगति पथ को कोई अवरूद्ध नहीं कर सकता है-

"न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये।"[55]

जब दिव्य भावों से भरा रहता हूं तो संसार की कोई शक्ति मेरे ऊध्वगमन मार्ग को नहीं रोक सकती, उन्नति की ओर अग्रसर होने से मुझे नहीं रोक सकती, पर्वत भी ऐसे व्यक्ति के मार्ग को नहीं रोक सकते हैं। ऐसे ही दिव्य भाव सदा हममें जागृत हों।

आत्म-निरीक्षण

वैदिक विचारधारा का लोप होने के कारण मानव के अन्दर आत्म-निरीक्षण करने का अभाव हुआ। वह मात्र दूसरों के दोष देखने, सुनने व खोजने में लगा रहता है, इससे मानव का, मानवीय गुणों के निर्माण का ह्रास हो गया। वैदिक विचारों वाला व्यक्ति तो प्रभु से प्रार्थना करता है-

"विश्वानि देव सवित दुरितानि परासुव।"[56]

सम्पूर्ण मंत्र में दुर्गुणों को दूर कर दने की प्रार्थना है। अथर्ववेद में भी दोषों को दूर करने की प्रार्थना इन शब्दों में की गई है-

बुरे स्वप्न=बुरी वासनाएँ, दुष्ट जीवन, आसुरी वृत्तियाँ, दरिद्रता तथा निन्दनीय वाणी को हम अपने से दूर करते हैं।

"प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः।

निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः।"[57]

हे मनुष्य! तू आत्म-निरीक्षण कर अपने अन्दर की राक्षसी वृत्तियों को दग्ध कर दे, स्वार्थ वृत्तियों को भस्म कर दे, राक्षसी वृत्तियों को जलाकर निःशेष कर दें, स्वार्थ वृत्तियों को भस्म करके समाप्त कर दे। मनुष्य को आत्म-निरीक्षण करके देखना चाहिए कि कहीं उसमें उल्लू के समान मोहवृत्ति, भेड़िये के समान क्रोधवृत्ति, कुत्ते के समान ईर्ष्यावृत्ति, चक्रवाक के समान कामवृति, गरूड़ की चाल के समान मद्वृत्ति तथा गिद्ध जैसी लोभवृति तो नहीं वास कर रही है, यदि कर रही हो तो उसे ऐसे नष्ट कर देना चाहिए जैसे पत्थर से किसी वस्तु को चूर कर दिया जाता है-

"उलूकयातुं शूशलूकयातुं जहि श्वयातुमुतकोकयातुम्।

सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र।।"[58]

इस आत्म निरीक्षण के भाव से हम सच्चे मनुष्य बनेंगे एवं संसार के कल्याण के लिए दिव्यजन को उत्पन्न कर सकेंगे-

स्वस्थ शरीर

वर्तमान जीवन विलासिता का जीवन हो गया है, धन की अधिकता में मनुष्य दुव्र्यसनों में डूबता जा रहा है, शरीर जो प्रगति का सोपान था, रोगों का घर बनता जा रहा है। शरीर साधन है आत्म-बोध का, शरीर साधन है मोक्ष प्राप्ति का। ऐसे

शरीर को महत्व देकर उसकी उपेक्षा करना, दुव्र्यसनों के पंक में फंस कर उसे क्षीण करना या कामक्रोधादि भावों से उसे कलंकित करना उचित नहीं है। केनोपनिषद का वचन है-

"इह चेदवेदींदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।"[59]

यदि इस मानव देह द्वारा उद्देश्य को (आनन्द, परमानन्द, मोक्ष को) प्राप्त कर लिया तो सत्य हैं, नहीं प्राप्त किया तो महान् विनाश है। व्यक्ति को सदैव इस शरीर को स्वस्थ रखना चाहिए-

"लोकं पृण छिद्रं पृणायो सीद ध्रुवा त्वम् ।"[60]

हे मनुष्य! तू अपने शरीर को दोषों से, दुर्गुणों और दुव्र्यसनों से रहित करके इस शरीर में स्थिरता पूर्वक निवास कर। मानव का यह शरीर उपेक्षा के लिए नहीं अपितु

"उत्क्राम महते सौभगाय यजुर्वेद"[61]

महान्, महत्वपूर्ण सौभाग्य-ऐश्वर्य, प्राप्त करने के लिए प्राप्त हुआ है। इस शरीर को पुष्ट करने की आवश्यकता है-

"घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व।"[62]

[54] ऋग्वेद 10/48/5
[55] ऋग्वेद 10/27/15
[56] यजुर्वेद 30/3
[57] यजुर्वेद 1/7
[58] अथर्व 8/4/22
[59] केन रवं 2/5
[60] यजुर्वेद 12/54
[61] यजुर्वेद 11/21

घृतादि पुष्टिकारक पदार्थो से अपने शरीर को पुष्ट करना चाहिए।

हे मनुष्य! तेरा शरीर पत्थर के समान दृढ़ हो अर्थात् कष्टों को सहन करने की सामथ्र्य तेरे अन्दर उत्पन्न हो। अग्नि, वायु, जल, पृथिवी आदि दिव्य शक्तियाँ तेरी आयु की वृद्धि करें।

त्याग

वेद त्यागपूर्वक भोग का उपदेश देता है। यह संसार परमेश्वर द्वारा निर्मित, धारित और पोषित है, वही इसका स्वामी है। संसार में भोग के लिये जो कुछ भी चराचर पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, उनका सबका दाता वही परमेश्वर है। हमारा कुछ भी नहीं, अतः यजुर्वेद का आदेश है कि, ‘‘तेन व्यक्तेन भु×जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।’’ अर्थात ईश्वर-प्रदत्त वस्तुओं का त्यापूर्वक भोग करो। किसी के धन का लालच मत करो। परिश्रम से जो धन प्राप्त हुआ है, उसी को बहुत मानकर सन्तोष करना चाहिए

‘‘वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः’’।

ऋग्वेद का कथन है कि उस व्यक्ति का धन और अन्न व्यर्थ है जो उसका दान नहीं करता, दूसरे को, नहीं खिलाता। अकेला खाने वाला कृपण व्यक्ति वस्तुतः मृत्यु को निमन्त्रण देता है। उस बचाये हुए धन, अन्न से न तो स्वयं की स्मृद्धि होती है न मित्र की। अकेला खाने वाला पाप को खाता है-

‘‘मोधमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।

नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादिः।।’’[63]

इसी की पुष्टि गीता करती है

‘‘भु×जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्’’[64]

वे पापी तो वस्तुतः पाप को खाते हैं जो अपने लिये पकाते हैं, स्वयं के लिये जीते हैं। अत एव तैत्तिरीय उपनिषद् का उपदेश है श्रद्धापूर्वक, अथवा बिना श्रद्धा के लाज शरम से, अथवा ईश्वर के भय से, दान अवश्य करना चाहिये। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। हिया देयम्। भिया देयम्।।

[62] यजुर्वेद 12/44
[63] यजुर्वेद 40/1
[64] ऋग्वेद 8/63/4

उपसंहारः

वेदों में मानव-निर्माण को आधार रख कर भूत-भविष्यत् वर्तमान सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान को बहुत सरल ढंग से कहा गया है

‘‘भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति’’

वेदों में सब कर्तव्यों कर्मो का प्रतिपादन किया गया है क्योंकि वेद सम्पूर्ण ज्ञान का कोष है। भौतिक आवश्यकताओं के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान का कोष वेद है वेद की विशेषता यह है कि वह ईसाई, मुसलमान, बौद्ध जैन, सिक्ख आदि बनने का उपदेश नहीं देता है। उसका संसार के समस्त मानवों के लिए समान उपदेश है। मनुष्य बनो।

‘‘मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्’’।[65]

मुक्ति को प्राप्त करना ही मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना जाता है यह सम्पूर्ण व्यक्तित्व की पूर्णता के बिना अधूरा है। वेदों में सृष्टि की उत्पति से मोक्ष तक एकेश्वर से बहु ईश्वर की भांति से पुनः अखण्ड ब्रहम को पुनः प्राप्त करने का ज्ञान छिपा है। प्रकृति एवं माया इसी ब्रहम के माया जाल है, जिनका आक्षेप किए बिना व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त नही कर सकता। यह माया केवल तभी तक जीव को प्रभावित करती है जब तक जीव का ब्रहम से साक्षात्कार नही हो जाता, वेदों में इसी लिए मन का संकल्पित करके कल्याणकारी होने की बात कही गई है। मन की कल्याणकारी दृढ़ संकल्प शक्ति ही मनुष्य को ब्रहम से मिलाने मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार सर्प केंचुली उतार फेंकने के बाद उससे कोई मोह नही रहता, उसी प्रकार जीवनमुक्त को भी अपने शरीर व विषयों से मोह नही रह जाता। सम्पूर्ण व्यक्तित्व के प्रगाढ़ हो जाने पर सत् और असत् श्रेय और प्रेय के अन्तर का ज्ञान ही विवेक है। विवेक ही मोक्ष की ब्रहम अनुभूति कराने वाला है। इस अनुभूति के बाद ब्रहम के साक्षात्कार होने पर स्वयं उसमे वह अंश मिल जाता है और ब्रहम हो जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अथर्ववेद संहिता : शास्त्री, राम राजा, पं. लाहौर, 1931

2. इंडियन फिलास्फी : राधाकृष्णन, डॉ. मोतीलाल बनारसीदास, 1986।

[65] श्रीमद्भगद्गीता 11/34

3. ऋग्वेद संहिता : सम्पादक विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर, सं. 2021

4. ऐतरेय ब्राह्मण : मालवीय, सुधाकर, डॉ. कमच्छा, वाराणसी, 1976

5. कठोपनिषद् : बरूखा, सं. अनुन्दोराय कलकता, 1975

6. जैमिनीय ब्राह्मण : रघुवीर, आचार्य, मोतीलाल बनारसीदास, 1976

7. मनुस्मृति : शर्मा, रामचन्द्र वी., डॉ. केन्द्रिय संस्कृत विद्यापीठं

8. महाभारत : सम्पादक विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर, सं. 2021

9. वशिष्ठ स्मृति : भार्गव, दीवान, भूषण प्रैस, वाराणसी, 1957

10. वैदिक सूक्त संग्रह : गीता प्रैस, गोरखपुर, 2012

11. वैदिक वाड्.मय : संस्कृति सदन, कोटा

12. यर्जुवेद : त्रिवेदी, कुमार राजेन्द्र, डॉ. परिमल पब्लिकेशन्ज, दिल्ली, 1983

13. शुक्ल यर्जुवेद : सिंह, उदय नारायण, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1960

14. श्रीमद्भगवद्गीता : गीता प्रैस, गोरखपुर

कोश ग्रन्थः

अमरकोष - अमरसिंह, चैखम्बा प्रकाशन, विद्याभवन, वाराणसी, 1982 संस्कृत-हिन्दी शब्दकोशः ईश्वरचन्द्र, परिजात प्रकाशन - प्र.सं. 1966

Corresponding Author

Harish Dutt*

Research Scholar, Sanskrit and Pali Department, Punjabi University, Patiala